International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 944-948

भावनाओं के तर्क तथा जीवन के विविध समय

डॉ0 विजय शंकर मिश्र
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), नई दिल्ली भारत।

प्रस्तावना

पद्मावत के अनेकाने प्रसंग भावकों के भावोद्वेलन को पराकाष्ठा तक ले जाने में समर्थ हैं। ''मानसरोदक खण्ड'' में पदमावती के सृष्टिव्यापी सौन्दर्य के वर्णन, ''राजा रत्नसेन सती खण्ड'', ''पार्वती–महेश खण्ड'' और ''राजा गढ़ छेका खण्ड'' में रत्नसेन का प्रेमी–रूप, ''नागमती वियोग खण्ड'' में नागमती की विरह–वेदना, ''लक्ष्मी समुद्र खण्ड'' में पदमावती की करुण व्यथा के वर्णन, ''देवपाल दूती खण्ड'' में दूती का व्यभिचार–मण्डन और ''पदमावती नागमती सती खण्ड'' में दोनों रानियों के सती होने के चित्रण सहृदयों को भाव–विह्वल कर देते हैं। इन वर्णनों को बहुधा संदर्भों से काट कर स्वतन्त्र रूप में पढ़ा और समझा जाता रहा है। इनमें भावोद्रेक इतना अधिक तीव्र है कि अर्थों की तार्किकता की ओर ध्यान जाना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप संदर्भ विस्मृत हो जाते हैं। मेरी विनम्र राय में पदमावत के कुछ विशिष्ट प्रसंगों की बेहद सघन मार्मिकता पाठकों–समीक्षकों को मोहित, बल्कि आक्रान्त करती रही है। इसलिए जायसी की संवेदनाओं के तर्कों को समझने–बूझने का प्रयत्न नहीं किया गया। फलस्वरूप महाकवि की समाजों, इतिहासों, मानसिकताओं, संस्कृतियों, मनुष्य–विषयक समझ को मात्र रसपरक दृष्टि से ही विश्लेषित करने पर ज़ोर दिया जाता रहा है।

''स्तुतिखण्ड'' में महाकवि ने अपने एक नेत्र को दर्पणवत् बतलाते हुए उसमें स्थित भावों को पूर्ण उज्ज्वल घोषित किया है–

एक नैन जस दरपन औ तेहि निरमल भाउ।[1]

रत्नसेन, पदमावती और नागमती सर्जक कलाकार के हृदयस्थ निर्मल भावों के मानवीकरण हैं। इनके मृत्यु–प्रसंग अतीव हृदयस्पर्शी हैं। इन स्थलों पर मानस उद्वेलित हो जाता है। करुणा की उत्ताल लहरें चेतना को आच्छदित कर लेती हैं। इनकी चोटों से कलेजा छलनी हो जाता है। ज्योतिषियों ने रत्नसेन के जन्म के समय ही उसका रूपएवं लग्न देख कर भविष्यवाणी कर दी थी कि वह राजा भोज के समान भोग और विक्रमादित्य के समान साका करेगा। विक्रम ने विलक्षण पराक्रम प्रदर्शित करते हुए शकों पर विजय–प्राप्ति के अनंतर शक संवत की स्थापना की थी–

पंडित गुनि सामुद्रिक देखहिं। देखि रूप औ लगन बिसेखहिं।।...
भोग भोज जस मानै बिक्रम साका कीन्ह।
परखि सो रतन पारखी सबै लखन लिखि दीन्ह।।[2]

राजा देवपाल की कुचाल को सुन कर रत्नसेन ने प्रतिज्ञा की कि तुर्कों के चित्तौड़गढ़ तक पहुँचने से पहले ही वह उसे पकड़ लेगा, मानेकि उसका वध कर देगा–

जब लगि आई तुरुक गढ़ बाजा। तब लगि धरि आनौं तौ राजा।।[3]

उसने ज्योतिषियों की भविष्यवाणी और अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया और काल के गाल में समा गया। जीवन मनुष्य का सर्वोपरि वित्त है। जायसी के अनुसार इससे वियुक्त होने पर रत्न होते हुए भी राजा कौड़ी के मोल का भी नहीं रहा। निष्प्राण होने पर प्रेम के खेल का जांबाज़ खिलाड़ी राजा रत्नसेन उपेक्षित भिक्षुक के समान पराया हो गया। हारे जुवारी की भाँति रीते हाथों वह परलोक चला गया–

चढ़ि देवपाल राउ रन गाजा। मोहि तोहि जूझि एकौझा राजा।।
मेलेसि साँगि आइ बिख भरी। मेंटि न जाइ काल की धरी।।
आइनाभि तर साँगि बईठी। नाभि बेधि निकसी जहँ पीठी।।
चला मारि तब राजैं मारा। कंध टूट धर परा निनारा।।
सीस काटि कै पैरैं बाँधा। पावा दाउँ बैर जग साँधा।।
जियत फिरा आइउँ बलु हरा। माँझ बाट होइ लोहें धरा।।
कारी घाउ जाइ नहिं डोला। गही जीभ जम काहै को बोला।।

सुद्धि बुद्धि सब बिसरी बाट परी मँझ बाट।
हस्ति घोर को काकर धर आना के खाट।।[4]

तेहि दिन साँस पेट महँ रही। जौ लगि दसा जियन की रही।।
काल आई देखराई साँटी। उठि जिउ चला छाँड़ि कै माँटी।।
काकर लोग कुटुँब घरबारू। काकर अरथ दरब संसारू।।
ओहि घरी सब भएउ परावा। आपन सोई जो बेरसा खावा।।
अहे जो हितू साथ के नेगी। सबै आग काढै पै बेगी।।
हाथ झारि जस चला जुआरी। तजा राज होई चला भिखारी।
जब हुत जीब रतन सब कहा। जौं भा बिन जिय कौड़ि न लहा।।

गढ़ सौंपा बादिल कहँ गए निकसि बसुदेउ।
छाँड़ी लंक भभीखन जेहि भावै सो लेउ।।[5]

इसके बाद के वर्णन करुणा में अंतर्निहित औदात्य से आत्लावित हैं। सर्वनाश की प्रक्रिया अपने अंतिम बिन्दु का स्पर्श करने के लिए तीव्रतम् गति से चल दी। विकराल शोक एवं दिव्य संगीतमय आनंद का ऐसा सम्मिश्रण दुर्लभ है। पाणिग्रहण संस्कार एवं मृत्यु के 'समय' एकरूप–समान हो गए। यहाँ केवल मिलन–ही–मिलन है। 'देहांत' चेतनाओं को चिरंतन मिलन की अवस्था प्राप्त करने से रोकने में अक्षम है। यह आत्माओं की क्रीड़ा है। लेकिन 'शरीर', 'संसार', 'भौतिकता' की दृष्टि से देखने पर युद्धप्रधान साम्राज्यवादी मध्यकालीन राजनीति सर्वनाश की भूमिका लिखती दिखलाई देती है। यह इतिहास का सत्य है। सत्तालिप्सा और भोग–लालसा सब–कुछ को ध्वस्त करने से बाज नहीं आई। मध्यकालीन इतिहास में ऐसे अध्याय बहुतायत से लिखे जाते रहे। जायसी द्वारा निर्मित

निसर्ग का महानतम्–अन्यतम् सौन्दर्य अकुण्ठित अमर प्रेम की चिरजीवंत स्मृतियों से जाज्वल्यमान है। वह पृथ्वी से विदाई चाहता है। इसकी तैयारियाँ बेहद मार्मिक हैं। पदमावती के रूप में महाकवि ने रूप एवं राग केपरम वैभवशाली संसार की मनोरम कल्पना की है। वह सृष्टि की रम्यता का सारतत्त्व है। अब इस संसार के जल कर भस्म होने का समय आ गया है। नई रेशमी साड़ी पहन कर अपूर्व रूप भौतिक संसार में मिलन की अंतिम भांवरे लेने के लिए तत्पर हुआ। सूर्य एवं चंद्रमा के एक साथ अस्त होने का प्रलंयकारी समय आया। पद्मिनी प्रकृति की सर्वोत्तम–अन्यतम उपलब्धि थी। उससे वंचित होने के घोर त्रासक सत्य का साक्षात्कार होने पर प्रकृति मर्मबेधी विलाप करने लगी। पद्मावती और नागमती का सौन्दर्य प्रेम की लालिमा से रक्तिम था। उसने ब्रह्माण्ड को लोहित कर दिया। दोनों रानियाँ सती हो गईं। रत्नसेन की चिता में वे राख हो गईं, लेकिन उन्होंने अंग नहीं मोड़ा। तीनों प्रेमपथिक नास्ति–हीन लोक में पहुँच गए। महाभाव प्रेम की अनंत यात्रा निरन्तर गतिशील रही–

पदुमावति नइ पहिरि पटोरी। चली साथ होइ पिय की जोरी।।
सूरुज छपा रैनि होई गई। पूनिवँ ससि सो उमावस भई।।
छोरे केस मोति लर छूटे। जानहुँ रैनि नरवत सब टूटे।।
सेंदुर परा जो सीस उघारी। आगि लाग जनु जग अँधियारी।।
एहि देवस हौं चाहति नाहाँ। चलौं साथ बाहौं गल बाँहाँ।।
सारस पंखि न जियै निनारे। हौं तुम्ह बिन का जियौं पियारे।।
नेवछावरि कै तन छिरिआवौं। छार होइ सँगि बहुरि न आवौं।।

दीपक प्रीति पतँग जेउँ जनम निबाह करेउँ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ कंठ लागि जिउ देउँ।।[6]

नागमती पदुमावति रानीं। दुवौं महासत सती बखानीं।।
दुवौं आइ चढ़ि खाट बईठीं। औ सिवलोक परा तिन्ह डीठीं।।
बैठौ कोइ राज औ पाटा। अंत सबै बैठिहि एहि खाटा।।
चंदन अगर काढ़ि सर साजा। औ गति देइ चले लै राजा।।
बाजन बाजहिं होई अकूता। दुऔं कंत लै चाहहिं सूता।।
एक जो बाजा भएउ बियाहू। अब दोसरें होइ ओर निबाहू।।
जियत जौं जरहि कंत की आसा। मुँए रहसि बैठहिं एक पासा।।

आजु सूर दिन अँथवा आजु रैनि ससि बूड़ि।।
आजु बाँचि जिअ दीजिअ आजु आगि हम जूड़ि।।[7]

सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा। सात बार फिरि भाँवरि दीन्हा।।
एक भँवरि भै जो रे बियाहीं। अब दोसरि दै गौहन जाहीं।।
लै सर ऊपर खाट बिछाई। पौंढीं दवौ कंत कंठ लाई।।
जियत कंत तुम्ह हम कँठ लाईं। मुए कंठ नहिं छाँड़हि साईं।।
औ जो गाँठि कंत तुम्ह जोरी। आदि अंत दिन्ह जाइ न छोरी।।
एहि जग काह जो आथि निआथी। हम तुम्ह नाहँ दुहूँ जग साथी।।
लागीं कंठ आगि दै होरीं। छार भइ जरि अंग न मोरीं।।

रातीं पिय के नेह गइँ सरग भएउ रतनार।
जो रे उवा सो अँथवा रहा न कोइ संसार।।[8]

भावनाओं के ऐसे बेहद तीव्र–अप्रतिहत प्रवाह में डूबने–उतराने से बचना असंभवप्राय है। इसलिए ऐसे स्थलों पर कुछ देर रुक कर प्रकृतिस्थ होना अनिवार्य है क्योंकि सर्जक कलाकार की महान् कवित्व–शक्ति ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंगों में सहृदयों के मस्तिष्क को स्तब्ध कर देती है। भावनाात्मक तनाव के चरम सीमा पर पहुँचने के साथ चेतना अतीव सघन विषाद से आच्छादित हो जाती है। मन सम्पूर्णता में द्रवित हो जाता है। आँखें शून्य में केन्द्रित होकर पता नहीं क्या खोजने लगती हैं। इसी कारण इस स्थान पर सहज होने तक रुकना अनिवार्य है। आगे की कविता भी बहुत अर्थवान् है। उन अर्थों की तटस्थ समीक्षा करने के लिए शोक से आकुल–व्याकुल मनःस्थिति से बाहर निकलना आवश्यक है। करुणा का प्रचण्ड आवेग उनकी वस्तुपरक समीक्षा नहीं करने देगा। यह लोक नश्वर है। यहाँ जो पैदा होता है, उसे मरना भी होता है, लेकिन स्वाभाविक–अस्वाभविक मृत्युओं में बुनियादी अंतर होता है। रत्नसेन की मृत्यु का आधारभूत कारण एक निश्चित प्रकारकी मानसिकता है। यह पुरुष–मात्र की प्रवृत्ति हो सकती है, लेकिन पदमावत में यह मध्यकालीन राजनीति की देन के रूप में उभरती है। इसे सामंती मानसिकता भी कह सकते हैं। इसी तरह पदमावती और नागमती की मृत्यु भी अस्वाभाविक है। उनके समक्ष सती होने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं बचा था। वह भी मध्यकालीन राजनीति का परिणाम है। इन्हें समझने के लिए इसी संसार में रहना होगा। परमात्मा के नास्ति–हीन लोक के खड़े हो कर इस नश्वर लोक के यथार्थ को विश्लेषित नहीं किया जा सकता। सनातन सत्यों का हवाला संसार के यथार्थ को नेपथ्य में डाल देगा और जीवन के तर्क कराहने लगेगें। ऐसे में महान् कविता के वास्तविक अर्थ हाशिए में चले जाते हैं।

पद्मावती और नागमती के रत्नसेन की चिता में सती होने के बाद तीन कडवक और हैं। अंतिम छंद वृद्धावस्था की भर्त्सना तथा यौवन की महिमा का है, जिसकी मानवीय जीवन के विविध समय के रूप में समीक्षा की जा सकती है। शेष बचे दो छंद महाकवि जायसी की जीवन एवं तदुनसार इतिहास–दृष्टि को समझने में बहुत सहायक प्रतीत होते हैं। इनमें जीवित लोगों की सोच और कर्मों का वर्णन है। चित्तौड़ पहुँचने पर अलाउद्दीन के हाथ चिता की राख ही लगी। यह भस्म विधाता की अनुपन रचना की थी। एकाएक ही सुल्तान की श्मशानी वैराग्यानुभूति प्रबल हो उठी। वह स्वयं को सर्वसमर्थ समझता था। पहली बार वह अपनी असमर्थता से परिचित हुआ। उसके अनुसार उसने जिस दुर्घटना को घटित होने से रोकने के लिए रात–दिन प्रयत्न किए थे, वही घटित हो गई–

होइ गा राति देवस जो बारा।।[9]

उसने एक मुट्ठी में राख भर कर उसे हवा में यह कहते हुए उड़ा दिया कि यह पृथ्वी झूठी है। उसका मन इस क्षण निर्वेद से आच्छादित दीखता है–

छार उठाइ लीन्हि एक मूँठी। दीन्हि उढ़ाइ पिरथिमी झूठी।।[10]

इस तथ्य में कोई संदेह नहीं कि पदमावत के अलाउद्दीन खिल्जी का लक्ष्य पद्मावती को हस्तगत करना था, चित्तौड़ का किला नहीं–

हठि चूरौं तौ जौहर होई। पदुमिनि पाव हिएँ मति सोई।।[11]

इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि उसका चित्तौड़–अभियान राजनीतिक प्रयोजनों से नहीं था। यहाँ जायसी ने राजनीतिक तथ्यों की अवहेलना की है। उनका निषेध किया है। इतिहास के अलाउद्दीन खिल्जी का चित्तौड़ पर आक्रमण पूरी तरह एक

साम्राज्यवादी अभियान था। खैर, जीवन एवं मृत्यु के सत्यों के साक्षात्कार से पैदा हुई वैराग्य–भावना से वह मात्र कुछ ही क्षण विचलित रहा। अनहोनी की होनी से विषादित हो कर वह वापिस दिल्ली नहीं लौट गया। साम्राज्य के विस्तार की लिप्सा से प्रेरित हो कर उसकी सेना ने मिट्टी खोदी और चारों ओर से गढ़ की घाटियों पर पुल बाँधे। उसकी और बादल के नेतृत्व की सेना के बीच भयंकर युद्ध हुआ। बादल वीरगति को प्राप्त हुआ। स्त्रियों ने जौहर कर लिया और पुरुष संग्राम करने हुए खेत रहे। सब–कुछ समाप्त हो गया। किला विजित हुआ और चित्तौड़ इस्लामी परचम तले आ गया–

सगरै कटक उठाई माँटी। पुल बाँधा जहँ जहँ गढ़ घाटी।।
भा ढोवा भा जूझि असूझा। बादिल आइ पँवरि होइ जूझा।।
जौंहर भईं इस्तिरी पुरुख भए संग्राम।
पातसाहि गढ़ चूरा चितउर भा इसलाम।।[12]

यहाँ कुछ सहज प्रश्न उठते हैं। जायसी का अलाउद्दीन पद्मावती का जौहर नहीं चाहता था। वह उसे अपने रनिवास में देखना चाहता था। इसके बावज़ूद आठ वर्षों के सुदीर्घ काल तक वह चित्तौड़ गढ़ को घेरे रहा। इतने लंबे समय तक दिल्ली से अनुपस्थिति ने अनेक विद्रोहों को जन्म दिया। उसके राज्य की सीमा उत्तर–पश्चिम में गजनी तक थी। हिन्दू कुश के पश्चिम में हेरात का सूबा था। ''हेरात के शासक ने पीछे से अलाउद्दीन के राज्य पर चढ़ाई कर दी और शाही थाने उठा दिए थे। ये शत्रु मुग़ल थे और इल्तुतमिश के समय से उस इलाके में बस गए थे।''[13] जायसी इस ऐतिहासिक तथ्य से भली–भाँति परिचित थे। सुल्तान अब और अधिक समय तक चित्तौड़ को घेरे नहीं रख सकता था। दिल्ली लौटना उसकी विवशता थी। ऐसे में पद्मावती को जीवित रखने के लिए समर्थ होते हुए भी गढ़ को नहीं तोड़ने की कल्पना जायसी की अपनी निजी सोच का परिणाम है। यह अनैतिहासिक कल्पना अलाउद्दीन के चरित्र को उज्ज्वलतर बनाती है–

आठ बरिस गढ़ छेंका अहा। धनि सुलतान कि राजा महा।।
आइ सहि अँबराँऊ जो लाए। फरे झरे पै गढ़ नहिं पाए।।
हठि चूरौं तो जौहर होई। पदुमिनि पाव हिएँ मति सोई।।
एहि बिधि ढीली दीन्ह तब ताँईं। ढीली की अरदासै आईं।।
पछिउँ हरेव दीन्ह जौ पीठी। सो अब चढ़ा सौहँ कै डीठी।।
जिन्ह भुइँ माँथ गँगन तिन्ह लागा। थाने उठै आउ सब भाग।।
उहाँ साह चितउर गढ़ छावा। इहाँ देस सब होई परावा।

जेहि जेहि पंथ न तिनु परत बाढ़े बैरि बबूर।
निसि अँधियारि बिहाइ तब बेगि उठै जब सूर।।[14]

इसके अनंतर सुल्तान रत्नसेन को छलपूर्वक वंदी बना कर दिल्ली के कारागार में यातनाएँ देता है। अंत में वह समस्त स्त्री–पुरुषों की हत्या करने वाला युद्ध करके चित्तौड़ पर अधिकार करने में सफल होता है। उसके द्वारा किए गए भीषण रक्तपात को जायसी मनुष्य की सत्ता–लिप्सा या साम्राज्यवादी चरित्र या राजनीतिक व्यवस्थाओं से जोड़ने से इंकार कर देते हैं। वे इसका बुनियादी कारण जीवित मनुष्य का तृष्णा से अनिवार्यतया आच्छन्न स्वभाव मानते हैं। इसी स्वभाव के कारण जब तक औसत मनुष्य के ऊपर धूल नहीं पड़ती मानेकि जब तक वह मर नहीं जाता, तब तक उसकी ऐसी इच्छाएँ भी समाप्त नहीं होती अर्थात् यह उसका अटल भाग्य है। यह हमेशा चलता रहेगा। सभी मनुष्यों की नियति से समन्वित घोषित करके महाकवि ने साम्राज्यवादी रक्त पिपासा की प्रवृत्ति का सामान्यीकरण कर दिया है। इसके साथ ही अलाउद्दीन पूरी तरह बरी हो जाता है। इससे यह सीधा अर्थ निःसृत होता है कि सुल्तान की पद्मावती पर अधिकार करने की कामुक कामना और नरसंहार करना मनुष्य के बुनियादी स्वभाव को देखते हुए अनैतिक एवं पैशाचिक नहीं थे–

जो लगि ऊपर छार न परई। तब लगि नाहिं जो तिस्ना मरई।।[15]

इसीलिए अलाउद्दीन का वैराग्य–बोध जीवन की चिरसंगिनी तृष्णा के समक्ष असहाय हो गया और उसने विनाश की लीला रची।
पदमावत की रचना शेरशाह सूरी के राज्यकाल (1540–45ई.) के दौरान पूरी हुई। स्वाभाविक तौर पर अलाउद्दीन खिल्जी दो सौ से अधिक वर्षों पहले मर चुका था। एक स्वाभाविक समय में हीरामन और राघव चेतन भी मृत्यु को प्राप्त हुए होंगे। चित्तौड़ के ध्वस्त होने के तुरंत बाद के छंद में जायसी अपने निर्मल भावों के मानवीकरणों को मार्मिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। कोरे–निरपेक्ष भावनात्मक स्तरों पर इसकी मार्मिकता असंदिग्ध है–

कहाँ सो रतनसेनि अस राजा। कहाँ सुवा असि बुधि उपराजा।।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू। कहँ राघौ जेइँ कीन्ह बखानू।।
कहँ सुरूप पदुमावति रानी। कोइ न रहा जग रही कहानी।।
धनि सो पुरुख जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।।

केइँ न जगत जस बेंचा केइँ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी हम सँवरै दुइ बोल।।[16]

पदमावत कुल 653 कडवकों का प्रबंधकाव्य है। एकदम अंतिम छंद वृद्धावस्था के कष्टों से जुड़ा है। उसका कथा से कोई संबंध नहीं है। छंद संख्या 648 से 650 में पद्मावती और नागमती रत्नसेन की चिता के साथ जौहर करती है। यहाँ भावों का अजस्र प्रवाह हृदय को द्रवित कर देता है। छह सौ इक्यानवें कडवक में भारी विनाश के बाद चित्तौड़ इस्लामी परचम तले आ जाता है। उपर्युक्त छह सौ बावनवाँ कडवक कथा का वास्तविक अंत है। इसकी भावुकता भी देखते ही बनती है। लेकिन इस भावना में अंतर्निहित तर्क किस विचारवाद का पोषण करते हैं, यह जानना आवश्यक है।
जायसी अपनी मोहक सर्जनाओं को दी गई भावमीनी श्रद्धांजलि में सबके प्रति बराबरी का मोह रखते हैं। उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं है। जीवन अंततोगत्त्वा मृत्यु में परिणत होता है। यह संसार का शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय सत्य है। इसीलिए अब भावलोक के अवशेष बचे हैं। कवि एकदम अकेला है। उसकी चेतना स्वप्नों की मादक दुनिया के मदमत्त व्यक्तित्वों की सुनहरी कहानी से महकने का प्रयत्न करती है। नशीले समय की मधुर स्मृतियाँ उसे सांत्वना प्रदान करती है। मौलिक कथा की समस्त इकाइयाँ पुष्पवत् सुगंधित हैं। जिस प्रकार पुष्प के मुरझा कर भूपतित होने के पश्चात् भी उसकी सुगंध विद्यमान रहती है, उसी प्रकार सौभाग्य के शिखरों पर कभी आसीन हुए राजा रत्नसेन, रानी पद्मावती, विद्वान् हीरामन, सुल्तान अलाउद्दीन एवं सौन्दर्य के प्रभावी वर्णनकर्त्ता राघव चेतन की यश–कीर्ति भी अमर है। उनकी कहानी चिंरतन है। यह विश्वास विषादग्रस्त महाकवि का एकमात्र संबल है।
हिन्दी साहित्य के इतिहास के पूर्वमध्यकाल अथवा भक्तिकाल के कवियों में यौवन के अभाव ने जैसी दारुण व्यथा मलिक मुहम्मद जायसी को दी, वैसी अन्य किसी कवि को नहीं। बहुत बाद में रीतिकाल के वास्तविक प्रवर्त्तक आचार्य केशवदास जवानी की कमी

से तब अवश्य ही बहुत दुःखी हुए थे जब चन्द्रवदनी–मृगलोचनी सुन्दरियाँ उन्हें केशों की धवलता अर्थात् वृद्ध होने के कारण 'बाबा' के विशेषण से संबोधित कर गई थीं–

केसव केसनि अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रबदन मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं।।[17]

वैसे साहित्यिक क्षेत्रों में अति प्रसिद्ध इस घटना की प्रामाणिकता पर्याप्त संदिग्ध है। इस दोहे का केशवदास द्वारा रचित होने का असंदिग्ध प्रमाण भी प्राप्त नहीं होता। जायसी के युग के किसी अन्य कवि ने इस मादक अवस्था के अभाव से किसी विशेष पीड़ा का अनुभव नहीं किया।

जायसी पदमावत में बारम्बार विगत् यौवन की स्मृति करते हैं। प्रबंधकाव्य के आरंभ में विशिष्ट समझ सामान्य सत्य को उद्घाटित करती है। इसके अर्थ में छिपे तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। इसकी स्वाभाविकता को स्वीकार करना ही होगा। जो जा कर नहीं आई, उसे जवानी कहते हैं और जो आ कर नहीं गया, वह बुढ़ापा कहलाता है। बारम्बार खोजने के उपरान्त भी नहीं मिलने वाले अमूल्य यौवन के महत्त्व से वृद्ध जितना परिचित होते हैं, उतना अन्य कोई नहीं–

जोबन मरम जान पै बूढ़ा। मिला न तरुनापा जब ढूँढा।।[18]

ग्रन्थ के अन्त तक आते–आते उक्त अनुभूति निश्चित जीवन–बोध का रूप ग्रहण कर लेती है। इस 'विश्वास' से सहमत नहीं हुआ जा सकता–

मुहमद बिरिध बएस अब भई। जोबन हुत सो अवस्था गई।।
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन्ह दै नीरू।।
दसन गए कै तुचा कपोला। बैन गए दै अनरुचि बोला।।
बुद्धि गई हिरदै बौराई। गरब गएउ तरहुँड़ सिर नाई।।
सरवन गए ऊँच दै सुना। गारौ गएउ सीस भा धुना।।

भंवर गएउ केसन्ह दै भुवा। जोबन गएउ जियत जनु मुवा।।
तब लगि जीवन जोबन साथाँ। पुनि सो मींचु पराए हाथाँ।।[19]

व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक अवस्था का निजी एवं विशेष नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। जीवन के क्षण–प्रति–क्षण का पारस्परिक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। जन्म का क्षण मृत्यु के क्षण से जुड़ा हुआ है। सौन्दर्य केवलमात्र यौवन में ही निबद्ध नहीं होता। उसे सम्पूर्णता में आयु की एक अवस्था–विशेष से सम्बद्ध करना जीवन के प्रति नितांत सीमित सोच का परिचायक है। जायसी विराट जीवन के शोधार्थी नहीं प्रतीत होते। वे उसके एक 'विशिष्ट समय' के कवि हैं। वे यौवन पर मुग्ध एवं केन्द्रित हैं। इसीलिए वे शारीरिक भोग के महान् चित्रणकर्त्ता हैं। श्रृंगारिक रति का अतीव ललित्यपूर्ण अंकन करने में उन्हें अपार सफलता प्राप्त हुई है। लेकिन वार्धक्यावस्था का अनुभव मात्र उन्हें हैरान–परेशान कर देता है। उपर्युक्त कडवक में वे बुढ़ापे के आने की सूचना से किंकर्त्तव्यविमूढ़ दिखलाई दे रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यौवन जाते समय अपने साथ शारीरिक बल, एक विशेष चमक, दशन, कपोलों का उभार, वाणी की स्पष्टता, श्रवण–क्षमता, केशों की कालिमा ले जाता है। लेकिन उसके विगत् होने के साथ सुहावने–मधुर–सार्थक बोल तथा विचार की शक्ति, बौद्धिक क्षमताएँ, सोचने का सामर्थ्य समाप्त नहीं होता, जैसाकि जायसी मानते हैं। उनके अनुसार वृद्धावस्था मृत्यु का पर्याय है, ठीक उसी तरह जिस तरह यौवन और जीवन पर्याय हैं। यौवन की अनुभूतियों को वार्धक्यावस्था की भावनाओं से पूर्णरूपेण विच्छिन्न देखने के कारण 'जीवन' की जीवंतता के समाप्त होने का बोध उन्हें विषादग्रस्त कर देता है। वे बुढ़ापे को जवानी की स्वाभाविक प्राकृतिक परिणिति मानने के स्थान पर स्वतंत्र रूप से आया शापित समय मानते हैं। स्पष्ट रूप से यह महाकवि जीवन के विविध समयों को एक–दूसरे से जुड़ा नहीं मानता। ज़िन्दगी की विभिन्न अवस्थाओं का निर्धारण प्रकृति ने किया है। इसमें हस्तक्षेप व्यर्थ–परिणाम ही हो सकता है। इसलिए यौवन जाने पर किया जाने वाला विलाप सीमित जीवन दृष्टि रखने वाले अध्येताओं को तो प्रभावित कर सकता है, लेकिन जीवन–दर्शन के गंभीर शोधार्थी उसे संकीर्ण समझ का सूचक ही मानेंगे।

यौवन के पास निस्सन्देह विशेष तरह के सामर्थ्य होते हैं– शारीरिक स्तरों पर कर्म का, भोग का, त्वरित निर्णयों का वगैरह–वगैरह। वह ऊर्जावान होता है। लेकिन वृद्ध भी सामर्थ्यहीन नहीं होता। उसके पास अनुभव होता है, गंभीरता के साथ चिंतन–मनन की क्षमता होती हैं, विचारशीलता होती है, कर्म की दिशाएँ निर्धारित करने का सामर्थ्य होता है, और बहुत–कुछ होता है। जहाँ तक परवश होने का संबंध है, वह जीवनपर्यन्त प्रत्येक व्यक्ति होता है। कोई भी मनुष्य जीवन जीते हुए स्वयं में सम्पूर्ण नहीं होता। संपूर्ण केवल निर्गण–निराकार परब्रह्म ही हो सकता है। परमात्मा भी जब पृथ्वी पर लीला रचाता है, तब उसे भी कहीं–न–कहीं दूसरों पर निर्भर होना पड़ता है। इसलिए जवान व्यक्ति को भी कदम–कदम पर प्रौढ़ों–वृद्धों से सहायता लेनी पड़ती है। अन्यथा भी मनुष्य पूरी जिन्दगी सामाजिक प्राणी होता है। मानवीय समाजों की समस्त इकाईयाँ एक–दूसरे पर आश्रित हैं।

तो फिर, जायसी वृद्धावस्था को मृत्यु क्यों मानते हैं? पदमावत में प्रायः सर्वत्र प्रसरित महाकवि के विशिष्ट विचारवाद के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने पर इसका मूलभूत कारण स्पष्ट हो जाता है। वे यौवन को जीवन की सर्वोत्तम अवस्था के रूप में स्थापित करते हैं। बुढ़ापा इस स्वर्णिम समय से टूट कर अलग हुई अवस्था है। स्वर्णकाल से छिटका समय म्रियमाण–निर्जीव है। इसी सोच के कारण वे विषादग्रस्त हो जाते हैं। इसीलिए वे जीवन–प्रसरित 'प्रेम' के स्थान पर यौवनाश्रित 'भोग' के महाकवि हैं। पूरे पूर्वमध्यकाल में वे अपनी तरह के एक–अकेले रचनाकार हैं।

पदमावत की पूरी कथा में मात्र एक वृद्ध चरित्र है– देवपाल द्वारा भेजी गई कुटिनी कुमुदिनी। जहाँ तक गोरा का संबंध है, वह एक किशोर वय के योद्धा बादल का पिता होते हुए भी वृद्ध नहीं है। जब बादल रत्नसेन को अलाउद्दीन के वंदीगृह से छुड़ाने के लिए चित्तौड़ से प्रयाण करता है, उसी समय उसका गौना होता है और पत्नी पतिगृह में आती है। उस समय विवाह बचपन, कई बार शैशवावस्था में ही हो जाता था। गौना वर–वधू के शारीरिक संपर्क हेतु तैयार हो जाने पर किया जाता था। तो माना जा सकता है कि तब बादल की आयु सत्रह–अठारह वर्ष के आसपास रही होगी। ऐसे में गोरा की आयु भी चालीस के पार की नहीं होगी। वह विकराल युद्ध करता है। अधिक आयु का व्यक्ति सामान्यतया युद्ध–भूमि में वैसा पराक्रम नहीं प्रदर्शित कर सकता, जैसा गोरा ने किया। अतएव वृद्धावस्था की चरित्र केवल कुमुदिनी ही है। इसके बारे में जायसी की राय बड़ी रोचक है। अनुभव के कारण आम तौर पर उम्रदराज़ लोग समझाने तथा बरगलाने दोनों कामों को अपेक्षाकृत अधिक कुशलता के साथ संपादित करने की क्षमता रखते हैं। लेकिन जायसी प्रत्येक कार्य में वृद्ध की असफलता को निश्चित मानते हैं।

इसलिए इस काम में भी वे वृद्धा को अनुपयुक्त घोषित करते हैं। वे तुरंत ही कुटिनी की असफलता की भविष्यवाणी कर देते हैं। भविष्यवाणी का आधार पदमावती का पातिव्रत नहीं हो कर कुमुदिनी की वृद्ध आयु है। जायसी ऐसा आभास कराते प्रतीत होते हैं कि जैसे यदि आयु पक्ष में होती, मानेकि कुमुदिनी यदि युवती होती तो वह अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेती–

बिरिध बएस जो बांधे पाऊ / कहाँ सो जोबन कत बेबसाऊ।।[20]

ऐसी धारणा वृद्धों के दो कर्त्तव्य निश्चित करती है– यौवन रूपी रत्न की लालसा और अपनी अवस्था पर दुःख। जायसी उम्रदराज व्यक्ति को चिरक्षुब्ध चित्रित करते हैं–

मुहमद बिरिंध जो नै चलै काह चलै भुईं टोइ।
जोबन रतन हेरान है मकु धरती महँ होइ।।[21]
बिरिध जो सीस डोलावै सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़े आढ़े होउ तुम्ह केंइँ यह दीन्ह असीस।।[22]

संस्कृत–साहित्य में एक अतीव गंभीर अर्थगर्भित संवाद बहुत प्रसिद्ध है। यह जवानी के नशे में चूर शरारती युवक और जीवनानुभवों से सम्पन्न वृद्धा के बीच हुआ है। अधोमुखी वृद्धा को युवक 'बाले' कह कर संबोधित करते हुए पूछता है कि नीचे पृथ्वी पर क्या देख रही हो? क्या कुछ खो गया है या गिर गया है? वृद्धा का उत्तर मार्मिक होने के साथ–साथ जीवन की उत्तेजक समीक्षा करता है। वह युवक को 'मूर्ख' कह कर संबोधित करती है क्योंकि उसकी समझ में युवक को अपने प्रश्न के उत्तर से सहज रूप में परिचित होना चाहिए था, इतना नाजानकार नहीं होना चाहिए था। वह कहती है कि तारुण्य रूपी मोती खो गया है, उसी को ढूँढ रही हूँ–

अधः पश्यसि किं बाले, पतितं तव किं भुवि?
रे, रे मूर्ख न जानासि, गतं तारुण्य मौक्तिकम्।।[23]

जायसी द्वारा कथित एवं संस्कृत के उक्त कथनों के अभिधार्थ समान हैं, लेकिन व्यंग्यार्थ अर्थों की आत्माओं को एकदम भिन्न पायदानों पर बैठा देता है। जायसी भावी समाप्ति से विषादित हो कर प्रलाप करते हैं, जबकि वृद्धा जीवन के यथार्थ की समझ से युक्त होने के कारण निरर्थकता–बोध से पूर्ण मुक्त है। उसमें एक विशिष्ट प्रकार की तेजस्विता है। युवक अवश्य ही जीवन के सत्यों को गंभीरता से समझने के प्रयत्न करने के लिए विवश हुआ होगा। जायसी का दूसरा कथन वृद्धों के लिए सीधे–सीधे अपमानजनक है। वे उसकी आयुनिहित गरिमा को छीन रहे हैं। इस स्थल पर बूढ़ा व्यक्ति हँसी और दया का पात्र बन गया है। जायसी जाने–अनजाने जीवन की इस अवस्था–विशेष की सार्थकता एवं गरिमा से अपरिचित हैं। वे यौवन रूपी स्वर्णकाल के कवि हैं। इसलिए उसका जीवन–बोध कबीर, सूर, तुलसी की भाँति विराट–व्यापक नहीं है। इसीलिए सौभाग्य के शिखरों से टूट कर किञ्चित नीचे गिरे व्यक्ति एवं उसके समूहों को संवेदना प्रदान करने से इंकार कर देते हैं।

यौवन की एकांत स्तुति तथा जरा की एकांत भर्त्सना सोच के संकुचित होने के संकेतक हैं। यौवन का जितना संबंध प्राकृतिक समय से है, उतना ही कर्म के रूप एवं दिशा से भी। खिलाड़ी, विशेषकर पहलवान, मुक्केबाज आदि तीस की उम्र के आसपास सेवानिवृत्तिकाल में प्रवेश कर जाते हैं। इसके विपरीत राजनीति कर्मी पचास की आयु में युवा माना जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक आयु का अपना विशिष्ट सौन्दर्य होता है। सौन्दर्य का गंभीर स्रष्टा–द्रष्टा उसकी अवेहलना नही ं कर सकता। मृत्यु कभी भी हो सकती है। वृद्धावस्था को मृत्यु का पर्याय घोषित करके वृद्ध से जीवन का अधिकार छीनने का प्रयास समझ में बुनियादी खोट का सूचक है।

संदर्भ

1. पदमावत, 21 / 1 / 21
2. वही, 73 / 3,6 / 1
3. वही, 645 / 4
4. वही, 646
5. वही, 647
6. वही, 648
7. वही, 649
8. वही, 650
9. वही, 651 / 3
10. वही, 651 / 4
11. वही, 532 / 3
12. वही, 651 / 6–7 / 57 / 4
13. पदमावत, सं. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ 699
14. पदमावत, 532
15. वही, 651 / 5
16. वही, 652 / 4 से 7 / 58 / 1
17. यह दोहा व्यापक क्षेत्रों में केशवदास द्वारा रचित माना जाता है।
18. पदमावत, 9 / 6
19. वही, 653 / 1 से 7
20. वही, 586 / 4
21. वही, 49 / 3
22. वही, 58 / 3
23. संस्कृत की लोकविश्रुत उक्ति